*शोध मंथन, 2017 ISSN: (P): 0976-5255, (e) : 2454-339X, Impact Factor 3.8942 (ICRJIFR)*
***UGC Aproved Journal No. 40908***

# "जैन मत में ध्यान साधना"

**आस्था सिंह*& मोहित कुमार****

***&****एम०फिल्, इतिहास विभाग, चौ० चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ**

**सारांश**

*भारतीय दर्शन साहित्य को विश्व में अद्वितीय स्थान प्राप्त है। प्रत्येक दर्षनषास्त्र में ध्यान को सर्वोपरि माना गया है। षोधार्थी द्वारा अपने षोध पत्र में जैन धर्म में ध्यान के विशय में विस्तारपूर्वक प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। जिस प्रकार अन्य भारतीय दर्षनों में ध्यान साधना की केन्द्रीय भूमिका रही है, ठीक उसी प्रकार जैन धर्म में भी ध्यान साधना को महत्व प्रदान किया गया है। जैन परम्परा में ध्यान के अर्थ को इंगित करते हुए इसे चरित्र–विशुद्धि का सर्वोत्तम साधन माना गया है। जैन दर्षन में ध्यान के लिए झाण और ज्ञान जैसे शब्दों का भी प्रयोग किया गया। षोध पत्र में शोधार्थी द्वारा जैन धर्म में ध्यान के प्रकारों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है, साथ ही ध्यान के इन प्रकारों द्वारा जीव किस प्रकार ''परम तत्व'' के लक्ष्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है, को भी इंगित किया गया है। क्योकि सम्पूर्ण जीव जगत की यह स्वभाविक कामना रहती है कि वह सदैव जीवित रहे। जीवित रहते हुए ही सर्वोच्च को प्राप्त करना प्रत्येक जीव का परम लक्ष्य होता है और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भारतीय दर्शन षास्त्र को सर्वश्रेष्ठ माना गया है।*

**मूल शब्द** 1. सांख्य2. योग 3. वेदान्त 4. मीमांसा 5. पुरूषार्थ 6. चित्तवषत्ति

शोध पत्र का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार हैः

**आस्था सिंह*,**
**मोहित कुमार****

*जैन मत में ध्यान साधना,*

शोध मंथन, दिस0 2017,
पेज सं0 1.6

http://anubooks.com/
?page_id=581
Artcile No. 1 (SM 461)

आस्था सिंह*& मोहित कुमार**

भारत के दर्शन साहित्य आत्मा–चिन्तन परम्परा में ध्यान को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। इसकी दृष्टि सत् में केन्द्रित होती है जो चित्त स्वरूप आनन्द और सर्वबंधन निवर्षत्ति का ज्ञान कराती है। इसका ध्येय है–आत्मा, परब्रह्म और परमात्मा। सांख्य, योग, वैषेशिक, जैन, बौद्ध, वेदान्त, मीमांसक आदि दर्शनों में ध्यान को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। सम्पूर्ण जीवन जगत की यह स्वभाविक इच्छा होती है कि वह सदैव जीवित रहे। जीवित रहते हुए सर्वोच्च को प्राप्त करना जीव का लक्ष्य होता है। भारत के सभी दर्षनों में परम् तत्व, परम् स्थिति या मोक्ष की अवधारणा को स्वीकार किया है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक भारतीय संस्कृति में दर्शन को जीवन का अभिन्न अंग माना गया है और साथ ही दर्शन को पुरूषार्थ साधना का आधार माना गया है। प्रत्येक जीव के जीवन का उद्देष्य परमानंद अथवा 'सत्मं्–शिवम–सुन्दरम्' की प्राप्ति को माना गया है। भारतीय दर्शनों का आधार तथा दिशा चाहे जो भी रही हो परन्तु उनका अन्तिम लक्ष्य एक ही प्रतीत होता सिर्फ और सिर्फ 'परम तत्व' की प्राप्ति। इस परम तत्व की प्राप्ति के लिए प्रत्येक जीव के लिए चित्तवृत्तियों का निरोध आवश्यक माना गया है। क्योंकि जीव के सम्पूर्ण बंधनों व (दुःखों) का कारण जीव की तृष्णा, इन्द्रियाँ या चित्त को माना जाता है। जब साधक चित्तवृत्तियों का निरोध कर देता है तब वह परम तत्व को प्राप्त कर लेता है।[1] इन चित्तवृत्तियों पर विजय प्राप्त करने का सर्वोत्तम मार्ग ध्यान साधना और समाधि को माना गया है। अन्य दर्शनों की भाँति जैन दर्शन (मत) में भी ध्यान और समाधि की परिकल्पना की गयी है।

जैन साधना पद्वति में भी ध्यान का स्थान सर्वोपरि माना गया है यदि कहा जाये कि ध्यान–साधना जैन योग साधना का प्रर्याय है तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। जैन परम्परा में ध्यान के अर्थ को इंगित करते हुए कहा गया है कि चरित्र–विशुद्धि के लिए ध्यान सर्वोत्तम साधन है। जैन परम्परा में ध्यान का जितना सूक्ष्म एवं विस्तश्त विवेचन किया गया है उतना शायद ही अन्यत्र कही किया गया हो। जैन धर्म एवं दर्शन में ध्यान के लिए 'झाण' अथवा 'ज्ञान' शब्द का प्रयोग देखने को मिलता है। ध्यान शब्द 'ध्मै चिन्तायाम' धातु से निष्पन्न हुआ माना जाता है। जिसका अर्थ होता है ''चिन्तन करना।''[2] ध्यान का अर्थ चिन्तन नहीं बल्कि चिन्तन का एकाग्रीकरण अर्थात् चिन्त को किसी एक लक्ष्य पर स्थिर करना या उसको निरोध करना ध्यान का वास्तविक अर्थ होता है।[3]

जैन ग्रन्थ तत्वार्थसूत्र में मन की वृत्ति का एक ही वस्तु पर अवस्थापन अर्थात् मन की वृत्तियों को एक स्थान पर केन्द्रित करने को ध्यान कहा गया है।[4] ध्यान मन की बहिर्मुखी चिन्तन धारा को एक ही ओर प्रवाहित करता है जिससे साधक अनेकचित्ता से दूर हटकर एक चित्त में स्थित होता हैं एक चित्त में स्थित होना ही ध्यान है। सर्वार्थ सिद्धि के अनुसार ''निश्चल अग्नि शिखा के समान अवभासमान ज्ञान ही ध्यान है।''[5] वही तत्वार्थ सूत्र में कहा गया कि उत्तम संहनन वाले का एकाग्रचित्ता निरोध ध्यान हैं। स्थानांग में संहनन को छः प्रकार का बताया गया है।[6]–(1) वज्र ऋशभनाराच (2) ऋशभनाराच (3) नाराच (4) अर्द्ध नाराच (5) कीलिका (6) सम्वर्तक

इनमें प्रथम तीन संहनन ध्यान के लिए उत्तम माने गये हैं। इसी प्रकार ध्यान में स्थिर अध्यवसाय को ध्यान का स्वरूप बतलाते हुए कहा गया है कि एकाग्रता को प्राप्त मन को ही ध्यान माना गया है अर्थात् परिस्पन्दन से रहित एकाग्र चिन्तन का निरोध ध्यान है।[7] राग, द्वेश और मिथ्यात्व के सम्पर्क से रहित होकर पदार्थ की यथार्थता को ग्रहण करने वाला जो विषयान्तर के संचार से रहित ज्ञान होता है, वह ध्यान है।

चित्त को किसी एक वस्तु या बिन्दु पर अन्तर्मुहर्त से ज्यादा देर तक रोक पाना मुश्किल होता है। जैन परम्परा में ध्यान का सम्बन्ध केवल मन से ही नहीं मना गया है बल्कि वह मन, वाणी और शरीर तीनों से सम्बन्धित माना गया है। इस आधार पर ध्यान की पूर्ण परिभाषा देते हुए कहा गया है कि–''शरीर, वाणी और मन की एकाग्र प्रवृत्ति तथा उसकी निरंजन दिशा, निष्प्रकम्प दिशा ध्यान है।[8] वास्तविक रूप से देखा जाये तो ध्यान वह प्रक्रिया है जिसमें संसार–बंधनों को तोड़ने वाले वाक्यों के अर्थों का चिन्तन किया जाता है। यानी समस्त कर्मकल नष्ट होने पर केवल वाक्यों का आलम्बन होकर आत्मस्वरूप में लीन होने का प्रयास किया जाता है। तत्वानुशासन तथा ज्ञानार्णव में ध्यान ही इस अवस्था को ''सारसी भाव सवीर्यध्यान'' के नाम से इंगित किया गया है। जैन धर्म में ध्यान के तीन प्रमुख अंग माने गये हैं– ध्याता, ध्येय और ध्यान।[9] परन्तु ज्ञानार्णव में ध्याता, ध्येय और ध्यान के अतिरिक्त फलम्, का उल्लेख चौथे अंग के रूप में हुआ है।[10] जैन धर्म में ध्याता में आठ गुण बताये गये हैं–(1) ध्याता भुमुक्षु हो, (2) संसार ते विमुक्त हो (3) क्षोभरहित हो व शान्त चित्त हो (4) वषी हो (5) स्थिर हो (6) जितेन्द्रिय हो, (7) संवरयुक्त हो, (8) धीर हो।

**ध्यान के प्रकार**

जैन धर्म में ध्यान को अलग–अलग प्रकारों में विभक्त किया गया है। प्रशस्त ध्यान और अप्रशस्त ध्यान। जो ध्यान शुभ परिणामों से किया जाता है उसे प्रशस्त ध्यान कहते हैं और जो अशुभ परिणामों से किया जाता है उसे अप्रशस्त ध्यान कहते हैं। इन दोनों के दो–दो भेद बताये गये हैं। प्रशस्त ध्यान के अन्तर्गत 'धर्मध्यान' एवं 'शुक्ल ध्यान' आते हैं और अप्रशस्त ध्यान के अन्तर्गत आर्त और रौद्र को रखा गया है। जैन धर्म में इन दो ध्यानों को संसार के कारण और हेतु के रूप में स्वीकार किया गया है। जबकि शुक्लध्यान को संसार के कारण और हेतु के रूप में स्वीकार किया गया है। जबकि शुक्लध्यान जो प्रशस्त ध्यान के अन्तर्गत आता है उसे संसार के मोक्ष के रूप में स्वीकार किया गया है।[11]

**आर्तध्यान**

अति का अर्थ–दुःख को माना गया है। दुःख से उत्पन्न होने वाला अथवा प्रिय वस्तु के वियोग एवं अप्रिय वस्तु के संयोग आदि के निमित्त से या आवश्यक मोह के कारण सांसारिक वस्तुओं में राग भाव का होना आर्तध्यान है। जीव आवांछनीय वस्तु की अप्राप्ति के प्रति दुःखी होता है और यह दुख–क्लेश रूप परिणाम ही आर्तध्यान के नाम से जाना जाता है।

**आर्तध्यान के प्रकारः–**(अ) अनिष्ट वस्तु–संयोग (ब) इष्टवस्तु–वियोग (स) प्रतिकूल बेदना (द) निदान

**(अ) अनिष्टवस्तु–संयोगः–**अप्रिय वस्तु के प्राप्त होने पर उसके वियोग के लिए सतत् चिन्तन करना अनिश्टवस्तु–संयोग अर्न्तध्यान कहलाता है।

**(ब) इष्टवस्तु–वियोगः–**प्रिय वस्तु का वियोग होने पर उसकी प्राप्ति के लिए सतत् चिन्तन करना इष्टवस्तु वियोग अर्न्तध्यान है।

**(स) प्रतिकूल वेदनः–**दुःख आने पर उसके निवारण की सत्त चिन्ता करना प्रतिकूल वेदना आर्तध्यान है।

**(द) निदानः–**अप्रात्य वस्तु की प्राप्ति के लिए संकल्प करना या सतत् चिन्तन करना निदान आर्तध्यान कहलाता है।

## रौद्रध्यान

रौद्रध्यान भी अप्रशस्त ध्यान के अन्तर्गत ही आता है जिसमें कुटिल भावों का चिन्तन किया जाता है। सामान्यतः रौद्र का अर्थ–क्रोध, बर्बर, भयानक आदि माना जाता है। कहा गया है कि ''प्राणिनां रोदानद् रूद्र, तत्र भवं रौद्रम'' अर्थात क्रूर, कठोर एवं हिंसक व्यक्ति को रूद्र कहा जाता है और उस प्राणी अर्थात जिसके द्वारा कार्य किया जाता है के भाव को रौद्र कहते हैं।[12] रौद्रध्यान के चार भेद बताये गये हैं–(अ) हिंसा (ब) असत्य (स) चोरी (द) विषय संरक्षण

**(अ) हिंसानन्द रौद्रध्यानः–**निर्दयी व्यक्ति द्वारा वध, बेध, बंधन, दहन, अंकन और मारने के क्रूर अध्यवसाय का होना या अनिष्ट वियाक वाले उत्कट क्रोध से ग्रस्त व्यक्ति द्वारा ध्वंस किये जाने पर उससे हर्श या सुख प्राप्ति का होना हिंसानन्द रौद्रध्यान कहलाता है।

**(ब) मृशानन्द रौद्रध्यानः–**झूठी कल्पनाओं के जाल में फँसाकर दूसरों को धोखा देने और छल–कपट से उसे ठगने आदि का विचार करना मृशानन्द रौद्रध्यान कहलाता है।

**(स) चौर्यानन्द रौद्रध्यानः–**किसी भी प्रकार की परवस्तु का अपहरण करना, चोरी कहलाता है और ऐसी चेष्टा वाले चिन्तन को चौर्यानन्द या स्तेयानुबन्धी रौद्रध्यान कहते हैं।

**(द) संरक्षणानन्द रौद्रध्यानः–**धन–धान्यादि भोग्य पदार्थों को जुटाना, उन्हें सुरक्षित रखने के लिए धन की रक्षा करना, परिग्रह में लीन रहना, अनिष्ट चिन्तन में व्याप्त रहना सबके प्रति शंकाशील होना संरक्षणानन्द रौद्रध्यान या परिग्रहानुबन्धी रौद्रध्यान कहलाता है।

## धर्मध्यान

धर्म का चिन्तन 'धर्मध्यान' है यह आत्मविश्वास का प्रथम चरण है, क्योंकि इस ध्यान में जीवन का रागभाव मंद रहता है और वह आत्म चिन्तन की ओर प्रवष्त्त होता है। इस संसार में सम्पूर्ण जीव–जगत दुःखों से घिरा हुआ है। अतः सभी जीव ऐसे लोक की कामना करते हैं जहाँ नाम मात्र का भी दुःख न हो। ऐसे ही अभीष्ट लोक पर जीव धर्मध्यान के माध्यम से ही पहुँच सकता है।

## धर्मध्यान के प्रकार

आलम्बन के आधार पर धर्मध्यान के चार प्रकार बताये गये हैं।[13] आलम्बन अर्थात किसी स्थल का आश्रय लेकर सूक्ष्म वस्तुओं की ओर बढ़ना। बिना आलम्बन के साधक का मन एकाएक स्थिर नहीं हो पाता। इसलिए साधक को किसी वस्तु का आलम्बन लेकर सूक्ष्मता की ओर बढ़ने का निर्देष दिया गया है। तत्वार्थसूत्र में भी धर्मध्यान के चार भेदों का उल्लेख मिलता है।[14]

(अ) आज्ञाविचय (ब) अपायविचय (स) विपाकविचय (द) संस्थानतिचय

**(अ) आज्ञाविचयः–**इसमें दो शब्दों का योग है 'आज्ञा' और ''विजय''। इसमें 'आज्ञा' का अर्थ होता है–प्रमाणपूर्वक बोध कराने वाला प्रवचन और ''विचय'' का अर्थ होता है–विचार या चिन्तन। सर्वज्ञ की आज्ञा को प्रधान मानकर उनके द्वारा बताये गये पदार्थों का भली प्रकार से चिन्तन करना आज्ञाविचय धर्मध्यान कहलाता है।

**(ब) अपाय विचायः–**राग–द्वेशाद्वि दोशों से छुटकारा पाने के लिए मनोयोग लगाना अपायविचय धर्मध्यान माना गया है।

**(स) विपाकविचयः**—शुभा शुभ कर्मफलों के उदय का घोतक 'विपाक' कहलाता है तथा कर्मफलों के क्षण—क्षण उदित होने की प्रक्रिया में संलग्न चित्त की एकाग्रता विपाक विचय धर्मध्यान कहलाती है।

**(द) संस्थानः**—तीनों लोकों के संस्थान, प्रमाण और आयु आदि का चिन्तन करना संस्थानविचय धर्मध्यान कहलाता है। योगशास्त्रों के अनुसार अनादि, अनन्त किन्तु उत्पाद, व्यय और ध्रोझय परिणामी स्वरूप वाले लोक की आकृति का जिस ध्यान में विचार किया जाता है वह ध्यान संस्थान विचय कहलाता है।

## षुक्ल ध्यान

सामान्यतः शुक्ल का अर्थ 'धवल' से लिया जाता है। किन्तु जैन ग्रन्थों में शुक्ल का अर्थ 'विशुद' अर्थात् निर्मल माना गया है। शुक्लध्यान ध्यान की वह अवस्था है जिसमें साधक अपने लक्ष्य की पूर्णता को प्राप्त करता है क्योंकि इस ध्यान में मन की एकाग्रता के कारण आत्मा में परम विशुद्धता आती है, और रागभावों अथवा कर्मों का सर्वथा परिहार हो जाता है। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि आत्मा की अत्यन्त विशुद्ध अवस्था को शुक्लध्यान कहते हैं। शुक्लध्यान को परम समाधि की अवस्था भी कहा गया है। जैन ग्रन्थों में इसके चार भेद प्राप्त होते हैं।[15]

(अ) पृथकत्ववितर्क सविचार (ब) एकत्ववितर्क अविचार (स) सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाती (द) व्युपरतक्रिया निवर्षत्ति

**(अ) पष्थकत्ववितर्क सविचारः**—यह ध्यान शुक्लध्यान की प्रथम अवस्था है, इसमे पृथक—पृथक रूप से श्रुत पर विचार होता है अर्थात श्रुत को आधार मानकर किसी एक द्रव्य में उत्पाद व्यय और ध्रौव्य आदि पर्यायों का चिन्तन करना पृथ्कत्ववितर्क सविचार ध्यान कहलाता है।

**(ब) एकत्ववितर्क अविचारः**—यह ध्यान शुक्लध्यान की स्थिति का दूसरा चरण है जिसमें साधक उत्पाद, स्थिति, भंग आदि पर्यायों में से किसी एक पर्याय में अपने मन को निर्वाहतगृह में रखे हुए प्रदीप की भाँति निष्प्रकम्प बनाकर चिन्तन करता है। चिन्तन की यह अवस्था ही शुक्लध्यान की द्वितीय अवस्था मानी गयी है। इस अवस्था में योगी के आलम्बन का उलटफेर बन्द हो जाता है।

**(स) सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपातीः**—पूर्व के शुक्लध्यान को करने से जब साधक के मन और वाणी के योग का पूर्ण निरोध हो जाता है व काय के योग का पूर्ण निरोध हो जाता है। इसके साथ ही काय के योग का पूर्वा निरोध नहीं होता साथ ही श्वासोच्छवास जैसी सूक्ष्मक्रिया शेष रह जाती है। तब उस अवस्था को सूक्ष्मक्रिया कहते हैं और इसका पतन नहीं होता इसलिए इसे अप्रतिपाती कहा गया है।

**(द) व्युपरतक्रिया निवर्षत्तिः**—यह शुक्लध्यान की अन्तिम अवस्था है। इसमे साधक के ध्यान की अवशिश्ट सूक्ष्म क्रिया की भी निवर्षत्ति हो जाती है तथा अ, इ, उ, ऋ, लृ इन पाँच हस्य स्तरों के उच्चारण में जितना समय लगता है उतने समय में केवली भगवान् शैलेषी अवस्था को प्राप्त होते हैं। जहाँ पर वह पर्वत की भाँति निश्चल रहता है। यह अति उत्तम ध्यान चौदहवें अयोगी गुणस्थान में प्रारम्भ होता है जिसमें कैवली भगवान अन्त समय से पहले समय में अर्थात उपान्त्य में 72 कर्मप्रकृतियों को तथा इसी गुणस्थान की अवशिष्ट तेरह कर्मप्रकृतियों को भी नष्ट कर देते हैं। इस अवस्था में साधक का सम्बंध इस संसार से पूर्णतः टूट जाता है और वह सीधे ऊर्ध्वगमन करके लोक के शिखर पर विराजमान होता है।

## निष्कर्ष



अतः इस प्रकार देखा जाये तो अन्य दर्शनों की तरह जैन दर्षन में भी ध्यान साधना को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है। इसके साथ ही ध्यान साधना के विभिन्न भेदों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है। जैन धर्म में साधक, ध्यान साधना के माध्यम से आत्मा के तल में प्रवेश करता है तो उसी क्षण उसे अपनी आत्मा की परमात्मा में अनुभूति होती है और वह अनुभूति ही जिस शान्ति और आनन्द की सृश्टि

करती है वही वास्तविक शान्ति होती है। साधक इसी शान्ति को परम शान्ति एवं परमानन्द कहते हैं। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी, बौद्ध आदि सभी के सिद्धान्त बहुत भिन्न हैं, लेकिन ध्यान के सम्बन्ध में इस संसार में काई भेद नहीं है। जीवन के आनन्द का मार्ग साधना से होकर ही गुजरता है। परमात्मा तक यदि कोई कभी पहुँचा है तो एकमात्र ध्यान की सीढ़ियों पर ही चढ़कर पहुँचा है।

## सन्दर्भ

1. खान, डॉ0 वसीम, भारतीय दर्शन में समाधि परम्परा (बौद्ध एवं योग दर्षन), साहित्यागर प्रकाशन, जयपुर प्रथम संस्करण 2016, प0सं0–65
2. चन्द, डॉ0 त्रिलोक, पातंणलयोग और श्री अरविन्द योग, ईस्टर्न बुल लिंकर्स दिल्ली 1991, पृ0सं0–37–38
3. खान, डॉ0 वसीम, भारतीय दर्शन में समाधि परम्परा (बौद्ध एवं योग दर्शन), साहित्यागर प्रकाशन, जयपुर प्रथम संस्करण 2016, प0सं0–84
4. वही
5. सर्वार्थ सिद्धि, प0सं0–445
6. स्थानांगसूत्र, 6130
7. तत्वानुशासन, भारतीय ज्ञानपीठ दरभंगा, 56
8. खान, डॉ0 वसीम, भारतीय दर्षन में समाधि परम्परा (बौद्ध एवं योग दर्शन), साहित्यागर प्रकाशन, जयपुर प्रथम संस्करण 2016, प0सं0–85
9. महापुराण 21/84
10. ध्याता ध्यान तथा ध्येय फलं चेति चन्तुष्टयम् ज्ञानार्णव 4/5
11. परे भोक्षतेतू/तत्त्वार्थसूत्र, 9/30
12. ज्ञानार्णव 24/2
13. योग शास्त्र 10/7
14. तत्तार्थ सूत्र 9/37
15. भगवती आरधना 1872–73